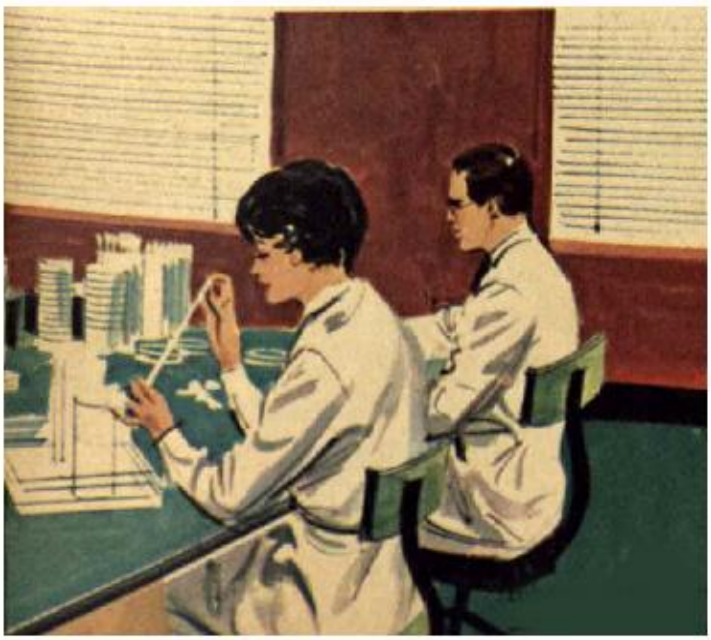

एंटीबायोटिक्स के शोध के लिए कल्चर बेड तैयार करने वाली प्रयोगशाला में कार्यकर्ता. इन आश्चर्यजनक दवाओं में पेनिसिलिन सबसे पहले खोजी गई.

अलेक्जेंडर फ्लेमिंग

पेनिसिलिन के आविष्कारक

(1881-1955)

उन्होंने अपनी खोज को एक परम सौभाग्य क्यों माना?

क्या एक महान वैज्ञानिक की खोज "अच्छे भाग्य" का परिणाम हो सकती है? अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने आश्चर्यजनक दवा, पेनिसिलिन की अपनी खोज को अपने "अच्छे भाग्य" का परिणाम बताया.

लेकिन वो शायद डॉ फ्लेमिंग की विनम्रता थी. दुनिया के सबसे महान जीवन रक्षक रसायनों में से एक को खोजने और विकसित करने में शायद "भाग्य" से कुछ अधिक लगा होगा. उसके लिए जिज्ञासा, कल्पना और वर्षों के वैज्ञानिक शोध की ज़रुरत होगी.

अलेक्जेंडर फ्लेमिंग के पास वो तीनों ही चीज़ें थीं. उनका जन्म स्कॉटलैंड में हुआ था, और स्नातक करने के बाद वे मेडिकल स्कूल में पढ़ने के लिए इंग्लैंड चले गए. उन्होंने 1906 में लंदन विश्वविद्यालय से मेडिकल डॉक्टर की डिग्री प्राप्त की और चिकित्सा अनुसंधान में विशेषज्ञता हासिल करने का फैसला किया. बैक्टीरिया के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी. जीवाणु छोटे एक-कोशिकीय जीव होते हैं. वे इतने छोटे होते हैं कि उन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी से ही देखा जा सकता है. पानी की एक बूंद में हजारों की संख्या में जीवाणु हो सकते हैं.

हालांकि कुछ बैक्टीरिया मनुष्य के लिए फायदेमंद होते हैं, लेकिन उनमें से ज्यादातर खतरनाक होते हैं. डिप्थीरिया, टाइफाइड बुखार, निमोनिया और तपेदिक जैसे रोग बैक्टीरिया के कारण ही होते हैं. ये छोटे सूक्ष्मजीवी हर जगह पाए जाते हैं - जब हम हवा में सांस लेते हैं, पीने के पानी में, जो भोजन हम खाते हैं, हमारी त्वचा पर और हमारे खून में भी. आपके अपने शरीर में इस समय हज़ारों-लाखों बैक्टीरिया होंगे. लेकिन उसमें घबराने की कोई बात नहीं है क्योंकि शरीर के पास उनसे आपकी रक्षा के कई तरीके होते हैं. बैक्टीरिया से लड़ने में सबसे प्रभावी, रक्त में पाई जाने वाली सफेद कोशिकाएं होती हैं.

अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने कई वर्षों तक रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं का अध्ययन किया. उन्होंने लंदन के सेंट मैरी अस्पताल की प्रयोगशाला में काम किया, जहाँ हर तरह की बीमारियों वाले मरीज़ आते थे. इन रोगियों से वो लगभग हर प्रकार के जीवाणु प्राप्त कर सकते थे जिनका वो अध्ययन करना चाहते थे.

1914 में, जब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया, तो उन्हें रॉयल आर्मी मेडिकल कोर में कप्तान के रूप में फ्रांस भेज दिया गया. जब वो घायल सैनिकों का इलाज कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि कठोर एंटीसेप्टिक्स कभी-कभी उपचार कम, और नुकसान ज्यादा करते थे. यह सच है, कि एंटीसेप्टिक्स रोग पैदा करने वाले कुछ जीवाणुओं को नष्ट करते थे. लेकिन साथ में वे खून में मौजूद सफ़ेद रक्त कोशिकाओं को भी नष्ट करते थे जो संक्रमण के खिलाफ शरीर की सबसे अच्छी रक्षा कवच थीं. फ्लेमिंग ने खुद से वादा किया कि जब वो अपनी प्रयोगशाला में वापस जाएंगे, तो वो बैक्टीरिया से लड़ने वाली एक ऐसी दवा की खोज करेंगे जो मानव ऊतक (टिश्यू) के लिए इतनी हानिकारक नहीं होगी.

1922 में उन्होंने एक उल्लेखनीय खोज की. उन्होंने मानव आँसुओं में एक रसायन पाया जो कुछ बैक्टीरिया को घोल सकता था. उन्होंने इस रसायन को “लाइसोजाइम” कहा. उन्होंने पसीने, लार और पेट के गैस्ट्रिक जूस में भी लाइसोजाइम पाया. आपके शरीर में मौजूद लाइसोजाइम और सफेद कोशिकायें हानिकारक जीवाणुओं से आपकी रक्षा करने के लिए लगातार काम करती रहती हैं.

माइक्रोस्कोप में से बैक्टीरिया का अध्ययन करने के लिए, वैज्ञानिक उन्हें जिलेटिन के छोटे डिश में विकसित करते थे. इन जिलेटिन डिश को ढक कर रखा जाता था ताकि कोई अन्य बैक्टीरिया अंदर न जा सकें. जैसे-जैसे मूल बैक्टीरिया बढ़ते हैं, वे एक छोटी "कॉलोनी" का निर्माण करते हैं और उसे बिना माइक्रोस्कोप के देखा जा सकता है.

1928 में फ्लेमिंग कुछ ऐसे बैक्टीरिया का अध्ययन कर रहे थे जो फोड़े और अन्य संक्रमण का कारण बनते थे. उनकी प्रयोगशाला में सौ से अधिक जिलेटिन डिशें थीं, और हर दिन वे जिलेटिन में बढ़ रहे बैक्टीरिया की जांच करने के लिए उनके ढक्कन उठाते थे.

फिर एक दिन एक "भाग्यशाली दुर्घटना" घटी. उन्होंने देखा कि एक बर्तन में नीले-हरे रंग की फफूंद उग रही थी. शायद उस पर किसी का ध्यान नहीं गया हो. शायद पिछली बार ढक्कन बंद करते समय वो फफूंद अंदर घुस गई हो. जीवाणु विज्ञान प्रयोगशालाओं में ऐसा अक्सर होता है, और तब वैज्ञानिक आमतौर पर कहते हैं, "ठीक है, एक और प्रयास बर्बाद हुआ." और फिर वैज्ञानिक उस नमूने को फेंक देते हैं.

लेकिन अलेक्जेंडर फ्लेमिंग कोई साधारण वैज्ञानिक नहीं थे. उनकी जिज्ञासा ने उसे बताया कि उन्हें उस नमूने की ओर बेहतर जांच करनी चाहिए. उन्होंने दूषित डिश को माइक्रोस्कोप के नीचे रखा और मोल्ड (फफूंद) को करीब से देखा.

वो एक सामान्य फफूंद थी इसलिए उन्होंने उसे तुरंत पहचान लिया. वो फफूंद, पेनिसिलियम समूह से संबंधित थी. “पेनिसिलियम” लैटिन शब्द से आता है और उसका अर्थ होता है "छोटा ब्रश" जो छोटे पेनिसिलियम के विकास के आकार का एक अच्छा वर्णन है. पेनिसिलियम का रोक्फोर्ट पनीर और ब्रेड में पाए जाने वाले फफूंद से निकटता का संबंध है.

लेकिन इस विशेष फफूंद ने कुछ बहुत ही असामान्य किया था. उसने डिश में रखे घातक जीवाणुओं को मार डाला था! चूँकि बैक्टीरिया-मारना उनकी विशेषता थी, इसलिए डॉ. फ्लेमिंग की उस नए फफूंद में बहुत दिलचस्पी जगी. उन्होंने उसका नाम पेनिसिलिन रखा और उसके बारे में और अधिक जानने की तैयारी शुरू की.

उन्होंने उस फफूंद के टुकड़ों को स्वच्छ, रोगाणु-विहीन जिलेटिन बर्तनों में प्रतिरोपित किया. फिर उन्होंने पेनिसिलिन के साथ विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं को डालना शुरू किया. कुछ बर्तनों में बैक्टीरिया उससे बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए. लेकिन कुछ अन्य में फफूंद ने उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर दिया. फ्लेमिंग ने कुछ उल्लेखनीय और अनूठा पाया था! इसके बाद, उन्होंने विभिन्न तरल पदार्थों में फफूंद को विकसित करने की कोशिश की - और उन्होंने पाया कि ये तरल पदार्थ कुछ जीवाणुओं को भी मार सकते थे. फिर वो सचमुच बहुत उत्साहित हुए. उन्होंने कुछ दिनों तक फफूंद को बढ़ने दिया, और देखा कि उसमें से एक सुनहरा तरल पदार्थ बाहर निकल रहा था. उन्होंने इस सुनहरे द्रव को पानी में मिलाया और उस पानी ने भी कुछ प्रकार के जीवाणुओं को मार डाला. उनका अगला कदम यह पता लगाना था कि क्या पेनिसिलिन, जानवरों के नाजुक टिश्यू (ऊतकों) को नुकसान पहुंचाए बिना या सफेद रक्त कोशिकाओं को नष्ट किए बिना, उनमें मौजूद बैक्टीरिया को मार सकती थी. समय-समय पर उन्होंने इस सुनहरे द्रव को डिप्थीरिया, निमोनिया और मेनिन्जाइटिस से संक्रमित चूहों और खरगोशों में भी इंजेक्ट किया. फिर कुछ समय के बाद वे बीमार जानवर ठीक हो गए! इसका मतलब था कि सफेद रक्त कोशिकाएं और पेनिसिलिन, बैक्टीरिया को नष्ट करने के लिए आपस में मिलकर काम कर सकते थे!

जब वो संतुष्ट हुए कि पेनिसिलिन नाजुक टिश्यू (ऊतकों) को नुकसान नहीं पहुँचाएगी, तो उन्होंने उसे लार में मिलाया और उसे अस्पताल के कुछ रोगियों के घावों में मल दिया. उन्हें यह जानकर निराशा हुई कि नई दवा पहले से प्रयोग किए गए मलहमों से अधिक प्रभावशाली नहीं साबित हुई.

फ्लेमिंग ने पेनिसिलिन के साथ कई वर्षों तक प्रयोग किया. लेकिन अंत में, उन्होंने महसूस किया कि वो उसके साथ और आगे प्रयोग नहीं कर सकते थे. उनके पास प्रयोग करने के लिए और पैसे नहीं थे. उन्हें अभी भी सटीक इलाज करने के लिए पर्याप्त मात्रा में सुनहरे द्रव के उत्पन्न करने का कोई तरीका नहीं मिला था. और, पेनिसिलिन लम्बे समय तक संग्रहीत करने के बाद अपनी शक्ति खो देती थी.

फ्लेमिंग को अपने लड़ाकू बैक्टीरिया को विकसित करने के लिए अन्य वैज्ञानिकों की मदद की सख्त जरूरत थी. बड़ी मात्रा में पेनिसिलिन का उत्पादन करने का तरीका खोजने के लिए उन्हें रसायनज्ञों की आवश्यकता थी. इंसानों पर उसका परीक्षण करने के लिए उन्हें डॉक्टरों की जरूरत थी. लेकिन हैरानी की बात यह थी कि उनमें से किसी ने भी पेनिसिलिन में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई. 1933 तक, "सल्फा" नामक दवाओं का नया समूह विकसित हो चुका था और कई डॉक्टर उसका परीक्षण करने में व्यस्त थे.

1939 तक दो ब्रिटिश वैज्ञानिकों, प्रोफेसर एच. डब्ल्यू. फ्लोरी और डॉ. ई. बी. चेन ने फ्लेमिंग के पेनिसिलिन पर कुछ शोध करने का फैसला किया. उन्होंने पाया कि वो सल्फा दवाओं की तुलना में कई गुना प्रभावी थी, और पेनिसिलिन ने घातक बैक्टीरिया से संक्रमित, चूहों का चमत्कारी इलाज किया था. जब उन्होंने सुनहरे द्रव को भूरे रंग के पाउडर में सुखाया, तो उसने अपनी शक्ति बनाए रखी और तब उसे लंबे समय तक संग्रहीत किया जा सकता था.

सर एलेक्जेंडर फ्लेमिंग और एक डिश का क्लोज़-अप जिसमें बैक्टीरिया का घोल था जिसमें पेनिसिलिन फफूंद डाली गई थी. केंद्र में पेनिसिलिन फफूंद है; फफूंद के आसपास का क्षेत्र बैक्टीरिया के विकास से मुक्त दिखता है; डिश की किनार के आसपास का क्षेत्र भारी बैक्टीरिया से भरा दिखता है.

1941 में डॉ. फ्लोरे ने मनुष्यों के रक्तप्रवाह में पेनिसिलिन का इंजेक्शन लगाने का निर्णय लिया. डॉ. फ्लेमिंग ने उसे कुछ रोगियों पर केवल बाहरी रूप से ही उसका इस्तेमाल किया था, लेकिन उन्होंने कभी भी बीमारी से लड़ने के लिए आंतरिक रूप से उसका इस्तेमाल नहीं किया था.

डॉ. फ्लोरे का पहला मरीज एक पुलिसकर्मी था जो एक भयानक संक्रमण से एकदम मौत के करीब था. पांच दिनों तक उसे पेनिसिलिन के इंजेक्शन दिए गए. इलाज के अंत में उसका तापमान सामान्य हो गया और वो उठकर रात का खाना खाते समय काफी अच्छा महसूस कर रहा था. लेकिन तब और अधिक पेनिसिलिन उपलब्ध ही नहीं थी, और न ही अधिक बनाने के लिए पर्याप्त समय था. उसके बाद पुलिसकर्मी की हालत और बिगड़ गई और अंत में उसकी मौत हो गई. यह एक दुर्भाग्यपूर्ण त्रासदी थी, लेकिन इससे चिकित्सा जगत ने यह जरूर सीखा कि पेनिसिलिन एक अद्भुत संक्रमण सेनानी था. उसका पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना एकदम ज़रूरी था.

पेनिसिलिन का उत्पादन करना बहुत कठिन था. उसकी बड़ी मात्रा में आवश्यकता थी, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो चुका था और हजारों लोग घायल हो रहे थे. इंग्लैंड अपने सभी कारखानों और जनशक्ति का उपयोग गोला-बारूद और रक्षा सामग्री बनाने के लिए कर रहा था. लेकिन अमेरिका अभी तक युद्ध में शामिल नहीं हुआ था. शायद उसके लिए अमेरिकी कारखानों का इस्तेमाल किया जा सकता था. अमेरिकी वैज्ञानिकों और औद्योगिक विशेषज्ञों ने मिलकर असेंबली-लाइन विधियों का उपयोग करके भारी मात्रा में पेनिसिलिन बनाने के तरीकों पर काम किया. धीरे-धीरे करके पेनिसिलिन का उत्पादन बढ़ा. 1944 तक, उसका टन उत्पादन हुआ और उसे विदेशों में युद्ध क्षेत्रों में भेजा गया. उस कीमती सुनहरे पदार्थ ने, हजारों सैनिकों की जान बचाई.

1944 के जून में अलेक्जेंडर फ्लेमिंग और डॉ. फ्लोरे को, पेनिसिलिन की खोज और उसे विकसित करने के लिए इंग्लैंड के सम्राट द्वारा नाइट की उपाधि दी गई. 1945 में, इन दो व्यक्तियों और डॉ. चेन को, संयुक्त रूप से, दुनिया के सर्वोच्च सम्मान नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया और साथ ही उनको संयुक्त रूप से $ 30,000 दिए गए.

पहले के मुकाबले अब पेनिसिलिन की कीमत बहुत कम हो गई है. लेकिन कीमत अभी भी बहुत अधिक है. कई देशों में बहुत से लोग उसे अभी भी खरीद नहीं सकते हैं. पेनिसिलिन को और भी सस्ते में बनाने की कोशिश में विज्ञान और उद्योग कड़ी मेहनत कर रहे हैं. शायद एक दिन दुनिया में हर किसी के पास सर अलेक्जेंडर फ्लेमिंग द्वारा खोजा गया यह अद्भुत बैक्टीरिया-फाइटर होगा. अलेक्जेंडर फ्लेमिंग एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके वैज्ञानिक दिमाग ने एक भाग्यशाली दुर्घटना को एक चमत्कार में बदल दिया.